



## समाज में शांति एवं अहिंसा की स्थापना: धर्म, अध्यात्म और राजयोग की भूमिका - वसुधैव कुटुम्बकम् के संबंध में एक संवेदनशील विश्लेषण

मेधावी शुक्ला

अनुसंधान अध्येता, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, भारत।

### सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख में मानव जीवन के सर्वाधिक संवेदनशील पक्षों को उजागर करने का प्रयास किया गया है जिससे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की विराट अभिव्यक्ति से जुड़ी सत्यता का भावनात्मक स्वरूप जीवन के व्यवहार में परिणित हो सके। सामाजिक जीवन में शांति एवं अहिंसा की स्थापना के परिदृश्य में - 'सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है' का मूल भाव सन्निहित है जो जीवन की गतिशीलता के मध्य आज ओझल सा हो गया है। जीवन में 'सर्व - धर्म समभाव' का अभिप्राय केवल धर्म - कर्म से सम्बद्ध प्रतीत होता है जबकि 'सर्वे - भवन्तु सुखिनः.....' का संदर्भ अध्यात्म और पुरुषार्थ से अनुप्राणित होता है तथा एक अंतिम आशा के रूप में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का वृहद भावार्थ 'राजयोग से उपजे गहरे मौन' को प्रतिबिम्बित करता है। इस शोध आलेख में अत्यंत सूक्ष्म रूप से इस सत्य को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है जिससे समाज में शांति एवं अहिंसा की स्थापना को निर्धारित करने में धर्म, अध्यात्म और राजयोग की स्पष्ट भूमिका का विश्लेषण किया जा सके। यदि मानव स्वभाव द्वारा सहजता से राजयोग की मौलिकता को आत्मिक कल्याण हेतु स्वीकार कर लिया जाए अर्थात् आध्यात्मिक जगत की सूक्ष्म अवधारणा का बोध उसे धर्मगत आचरण के कर्मगत उदाहरण से जीवन को गतिशील रखने की प्रक्रिया में स्थायी रूप से संलग्न कर देता है। जीवन के प्रति धर्म एवं कर्म की स्वीकारोक्ति व्यक्ति को 'भक्ति - मार्ग' के उच्च आयाम पर स्थापित करते हुए आत्म दृष्टि की श्रेष्ठ प्रक्रिया के लिए मनुष्य को अध्यात्म तथा पुरुषार्थ द्वारा 'ज्ञान - मार्ग' की ओर अग्रसर हो जाने के लिए प्रेरित करती है। अतः आत्मिक विकास से व्यक्ति अपने जीवन में ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति से अभिभूत होकर राजयोग और मौन के 'पवित्र - मार्ग' की ओर गतिशील होता है जो सामाजिक 'शांति एवं अहिंसा' की स्थापना में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम हो जाता है।

**मूल शब्द :** मानव जीवन, शांति एवं अहिंसा की स्थापना, वसुधैव कुटुम्बकम्, ईश्वरीय सत्ता।

### प्रस्तावना

सृष्टि के आरंभ से ही सामाजिक जीवन की विभिन्न स्थितियों में प्राणी मात्र के मध्य आपसी संबंधों के विभिन्न आयाम निर्मित रहने के कारण एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से लोक - व्यवहार करते हुए गतिशील था। जीवन का आरंभिक काल न्यूनतम आवश्यकताओं के साथ पूर्णता के प्रति संतोषजनक परिवेश से होता हुआ सदा की भांति व्यतीत हो जाना एक सहज स्थिति का परिचायक है जिसमें आपसी संघर्ष के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह जाता है। मनुष्य ने जब जीवन की इच्छाओं के लिए अपनी आन्तरिक क्षमताओं का प्रयोग किया उस समय बाह्य जगत के प्रति विस्तारवादी दृष्टिकोण को अपना अनिवार्य स्थिति बन गयी जिसकी परिणति सब कुछ समेटने के लिए तत्परता से कार्यरत होने लगी। व्यक्तिवादी मनः स्थिति के अंतर्गत 'मैं' और 'मेरा' का तार्किक प्रस्तुतिकरण 'स्व - नाम - धन्य' से भरपूर होने के कारण सम्पूर्ण व्यवहार केवल व्यक्ति, घटना, विचार एवम् भावना तक सीमित हो गया जिसमें संकीर्ण मानसिकता की स्थितियां एक दूसरे को आहत करने का प्रमुख कारण बन कर रह गयीं। समाज में सभी मनुष्य सर्व के कल्याण हेतु मनन एवम् चिंतन करने लगे तथा एक दूसरे के सुख - दुःख में भागीदारी निभायें, जिससे सामाजिक सदभाव का जन्म हो जाए और यह व्यवहार समाज के व्यक्तियों के लिए सदा स्वीकार्य भाव में संपन्न हो सके। यह स्थिति सात्विक परिकल्पना का परिणाम है जीवन के विविध पक्ष अपने आप में सब कुछ प्रगट करने के लिए पर्याप्त होते हैं लेकिन मानवीय कर्तव्य निष्ठा धर्मगत व्यवहार के लिए सदा से ही आशान्वित रहती है जिससे अधिकार एवम् कर्तव्य का संतुलन बना रहना सुनिश्चित हो जाता है। एक मनुष्य समाज में रहते हुए इस बात को समझता है कि मुझे क्या करना है? क्या नहीं करना है? और वह स्वयं की 'समझ' के अनुसार सत्य एवं असत्य का आंकलन

करते हुए जीवन पर्यंत अपने व्यवहार को नियंत्रित करता रहता है। कई बार सामाजिक दबाव की समाज शास्त्रीय स्थितियां मानवीय आचरण को निर्धारित करती हैं जिसमें धर्म सम्मत 'आचार - व्यवहार' की मर्यादाएं कार्यरत रहती हैं जो जीवन के 'धारणा' पक्ष को क्रियान्वित करने में मददगार सिद्ध होती हैं। एक सामाजिक व्यवस्था में स्थूल संसाधनों की पूर्ति के पश्चात् सूक्ष्म श्रेष्ठ व्यवहार की आवश्यकता होती है जिससे समाज व्यवस्थित रूप से गतिशील हो सके। समाज में शांति एवं अहिंसा की स्थापना जब सामान्य मानवीय प्रयास से पूर्णता को प्राप्त नहीं हो पाती है तब धर्म पक्ष की आवश्यकता अच्छे कर्म की प्रासंगिकता के रूप में अनिवार्य हो जाती है।

### धर्मगत आचरण के कर्मगत उदाहरण

मनुष्यगत आचरण की सामाजिक स्वीकारोक्ति उन स्थितियों में व्यक्ति के द्वारा घटित हो जाती है जिस समय व्यक्ति धर्म - कर्म की व्यावहारिकता को भक्ति - भाव के साथ जीवन के व्यवहार में मानवीय आस्था के साथ प्रकट कर देता है। यदि हम जीव-जगत के संबंधों की बात करें तो हमें यह ज्ञात हो जाएगा कि कैसे समाज के भीतर विभिन्न धर्म और उनसे उपजे सम्प्रदाय जो किसी निश्चित विषय-वस्तु के अंतर्गत कल्याणकारी कार्यों में संलग्न हैं। राम चरित मानस की एक चौपाई धर्मगत विभिन्नताओं के पश्चात् भी सामाजिक समरूपता को एकाकार करने में मददगार सिद्ध होती है जिसके अंतर्गत 'नदिया एक घाट बहुतेरे.....' जैसे सत्य का स्वरूप विद्यमान है। मानवजाति के द्वारा 'सामाजिक शांति एवं अहिंसा' की स्थितियों को बनाये रखने हेतु 'धर्म के मर्म' को गहरे स्तर पर स्वीकार करना होगा जिससे समाज में धर्मगत आचरण के कर्मगत उदाहरण मर्मगत स्वरूप में स्थापित हो सकें।

सामाजिक परिवेश में मानव द्वारा रचित स्वरूप जब कर्तव्य एवम् अधिकार के सामंजस्य को बोध के स्तर से व्यवहार के क्रियान्वयन तक स्थानान्तरित कर देते हैं तब धर्म सम्मत आस्था पर किसी भी प्रकार का कुठाराघात नहीं होता है। स्व कल्याण की दिशा में किये गए कार्यों का लेखा - जोखा भले ही बाह्य स्वरूप में प्रगट नहीं होता लेकिन आंतरिक समझ को सीखने के अभ्यास से जोड़ने की मनःस्थिति व्यक्ति को नवीन अनुभवों की ओर अग्रसित करने में मददगार होती है। जीवन के जागृत परिदृश्य को स्वयं की बोधगम्यता के लिए आधार मानकर व्यक्ति इस सत्य को अंगीकार कर लेता है कि इस नश्वर शरीर में आत्मा विराजित है जिसे विज्ञान जगत ने 'जीव-आत्मा' के रूप में स्वीकार कर लिया है। आत्मिक विकास के अनुक्रम में निज जीवन के प्रति आशान्वित भाव मनुष्य को बढ़ते क्रम के लिए अभिप्रेरित करते हैं जहां से वह आत्मा के संदर्भ को कल्याण के सुखद प्रसंग में परिवर्तित होते हुए अनुभव करने लगता है।

### आध्यात्मिक जगत की सूक्ष्म अवधारणा

भौतिकवाद के मध्य अध्यात्मवाद का पुरुषार्थ जीवन की गतिशीलता में कठिन अवश्य लगता है लेकिन किसी भी युग में इस प्रकार का आत्मिक परिष्कार असंभव नहीं हुआ है। जीवन में शांति एवम् अहिंसा का मार्ग आत्मा से जुड़ा गहन पक्ष है जिसकी विराटता सामाजिक सौहार्द के रूप में प्रकट होती है क्योंकि आत्म दर्शन की व्याहारिकता आध्यात्मिक जगत की सूक्ष्म अवधारणा से प्रतिपादित होती है। व्यक्तिगत जीवन के पुरुषार्थ में आत्मा के गुण एवम् शक्ति को विकसित करने के लिए आत्मिक शक्ति के प्रति जागृत मनोभाव स्वयं को सक्षम बनाने के निमित्त कार्य करते हुए अग्रसर रहते हैं तब जीवन की मौलिकता आत्मिक उत्कर्ष का कारण बन जाती है। आत्मिक स्मृति का सर्वाधिक लाभ उस समय आत्मा को प्राप्त होता है जब वह स्वयं की श्रेष्ठ स्थिति से विपरीत परिस्थितियों में भी विजयी बन जाती है और आत्मिकता के भाव को निरंतर बनाये रखते हुए पुरुषार्थ के पवित्र कार्य में अपना सब कुछ अर्पित करने के लिए तत्पर हो जाती है। सामाजिक जीवन के अंतर्गत व्यक्तिगत मनुष्य के सम्बन्ध में जिन मानवीय संरचनाओं का जन्म सुनिश्चित होता है उसमें अति सूक्ष्म आध्यात्मिक पुरुषार्थ सम्मिलित है जो एक व्यक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप से अवगत कराता है। स्वयं की उपयोगिता को स्व कल्याण से विश्व कल्याण के मंगल कार्य में संलग्न कर देने से स्वयं की अवस्था को ऊँचा बनाने की ओर गतिशील किया जा सकता है जो अंततः आत्मा को श्रेष्ठ स्वरूप में रूपांतरित करने में मददगार होता है। सामाजिक शांति एवम् अहिंसा की स्थापना मानवीय विचारधारा का वह सबल पक्ष है जिसमें व्यक्तिगत व्यवहार की उच्चता उसके द्वारा स्वीकृत की गयी धार्मिक व्यवस्था में सम्मिलित रहती है। जीवन की गतिशीलता में आत्मिक कल्याण का भाव पोषित होते हुए आत्मा के गुणात्मक स्वरूप में व्यावहारिक होने की स्थिति के लिए कार्य करना मानव की श्रेष्ठता का प्रमाण है। स्वयं के व्यक्तिगत अस्तित्व की महत्ता को सदा शक्तिशाली बनाने की चेष्टा के साथ अंगीकार करने हेतु पुरुषार्थ करना आवश्यक होता है जिसमें आत्मा का संबंध परमात्मा से स्थापित हो जाता है और आत्मा गुण एवम् शक्तियों से सुसज्जित होने लगती है। शरीर और शरीर से जुड़े बन्धनों को निभाने के लिये धर्म की उपादेयता लौकिक जगत के पोषण का पर्याय बनती है जिसकी सहजता मानवीय आचरण का केंद्र बिंदु बन जाती है जिसमें भक्ति - भाव के साथ की गयी साधना अंततः मनुष्य के संतोष का कारण होती है।

### राजयोग की मौलिकता से आत्मिक विकास

जीवन में आत्मा एवम् आत्मा से सम्बंधित गतिविधियों के प्रति चेतना का विकास आध्यात्मिक जगत का आलौकिक स्वरूप है जो मनुष्य को उसके 'आगमन एवम् प्रस्थान' के परिदृश्य में छिपे रहस्यों को उजागर करता है जिससे आत्मा अपनी चेतनता को आत्मसात करके अपने वास्तविक स्वरूप में विद्यमान होने के लिए सजग

हो जाती है। सामान्यतः मानव द्वारा चेतन मन से धर्म को अपनाते हुए जीवन की पूर्णता तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है जिसके अंतर्गत मानवीय भावनाओं की प्रधानता नीहित रहती है। सामाजिक व्यवस्थाओं के भीतर मनुष्य के अंतर्मन में स्वयं की अनुभूति जब स्व संवाद का कारण बन जाती है तब अध्यात्म अर्थात् आत्मिक स्थितियों के लिए कार्य करना और आत्मा के उत्थान हेतु मनन - चिंतन किया जाना श्रेष्ठ पुरुषार्थ का प्रमाण होता है। जीवन की चेतना में सदा यह उथल - पुथल बनी रहती है कि क्या एक मात्र धर्म अथवा अकेला अध्यात्म या केवल राजयोग से जीवन ज्योति की गुणवत्ता को आलोकित करना संभव है? इस सत्य के प्रत्युत्तर में धर्म की लौकिकता के साथ अध्यात्म के आलौकिक स्वरूप और राजयोग की पारलौकिकता का श्रेष्ठ सामंजस्य आत्मा की उच्चता का आधार है। अतः सृष्टि पर सामाजिक व्यवस्था में शांति एवम् अहिंसा की स्थापना हेतु मानव जाति द्वारा हृदय और मस्तिष्क से धर्म के आचरण को स्वीकृत करते हुए व्यवहार में अध्यात्म की मौलिकता से आत्मिक विकास तथा राजयोग से आत्मा को शक्ति एवम् गुण संपन्न बनाकर सामाजिक सदभाव का साम्राज्य निर्मित किया जा सकता है।

### उपसंहार (निष्कर्ष)

सामाजिक जीवन में शांति एवं अहिंसा की स्थापना में व्यक्तिगत व्यवहार का विशेष योगदान होता है जिसमें व्यक्ति, घटना, विचार एवं भावना की प्रमुख रूप से प्रधानता रहती है। सामान्य जीवन काल में स्वयं की मनः स्थिति द्वारा निर्मित व्यक्ति की आवश्यकता, इच्छा एवं लोभ के मध्य सामंजस्य को सात्विक परिकल्पना द्वारा परिवर्तित करके स्व - कल्याण से सर्व - कल्याण हेतु 'मनन - चिंतन' के वैचारिक धरातल से सहभागिता का निर्माण किया जा सकता है। धर्म सम्मत आचार - विचार की मर्यादा, व्यक्ति के जीवन में धारणा पक्ष का प्रतिपादन 'अच्छे - कर्म' की प्रासंगिकता से आरंभ करती है जिसका सुख आत्म संतुष्टि का कारक बनता है और अन्य आत्माओं को सहजता से 'श्रेष्ठ - कर्म' करने की प्रेरणा प्रदान करता है। स्वयं के व्यवहार नियन्त्रण में सामाजिक दबाव का प्रभाव व्यक्ति को क्या करना है? तथा क्या नहीं करना है? के आंकलन को जीवन की व्यावहारिकता से आचरण युक्त बनाने में सहायक होता है। समाज में शांति एवं अहिंसा की स्थापना में धर्मगत आचरण का अत्यधिक महत्व होता है क्योंकि व्यक्ति के द्वारा 'धर्म के मर्म' अर्थात् अहिंसा परमो धर्म: ...' को अनुभव करते हुए कर्तव्य बोध एवं दायित्व बोध को स्वीकार कर लिया जाता है। व्यक्ति के द्वारा स्वयं के भीतर आत्मा की स्वीकारोक्ति इस बात का प्रमाण होता है कि व्यक्ति 'आत्मा के सौन्दर्य' को उसके गुण एवं शक्ति से संपन्न स्थिति के रूप में अपनाता है जो सर्व आत्माओं के मध्य 'आत्मिक संबंध' अर्थात् 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सुखद परिणाम के रूप में प्रकट होते हैं। आध्यात्मिक जगत की सूक्ष्म अवधारणा ने आत्मा के उन्नयन का पुरुषार्थ, आत्मा की श्रेष्ठता के लिए आत्म परिष्कार के स्वरूप में पुरुषार्थ करके आत्मसात कर लिया है जिससे मंसा, वाचा एवं कर्मणा की पवित्रता को व्यावहारिक जगत में अक्षुण्य बनाए रखना आसान हो जाता है। स्वयं के कल्याण (आत्मिक उत्थान) की परिभाषा आध्यात्मिक जगत में इतनी बड़ी होती है कि उसमें विश्व कल्याण का मंगलकारी कार्य स्वयंमेव समाहित रहता है जो समाज में शांति एवं अहिंसा को बनाये रखने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मददगार सिद्ध होता है। एक मनुष्य होने के नाते स्वयं के जीवन में धर्म से जुड़े कर्म की व्याख्या लौकिक जगत के पोषण में सहायक होती है क्योंकि धर्म से सम्बंधित आचरण व्यक्ति के हृदय एवं मस्तिष्क में भावना की प्रधानता के साथ जुड़े होते हैं। राजयोग की मौलिकता अर्थात् 'आत्मा एवं परमात्मा के एकाकार स्वरूप' से आत्मिक विकास की सुनिश्चितता होती है जो स्वयं की आत्मिक अनुभूति पर पूर्णतया आधारित होती है क्योंकि यहाँ आत्मा के गुण एवं शक्ति का ही चिंतन किया जाता है। आत्मा से सम्बंधित गतिविधि के प्रति चेतना का विकास आध्यात्मिक जगत का अलौकिक स्वरूप है जो आत्मा द्वारा अपनी चेतनता को स्वीकार करके वास्तविक स्वरूप में विद्यमान हो जाती है जिसे अतीन्द्रिय सुख के

रूप में अनुभव किया जा सकता है। इस प्रकार ' समाज में शांति एवं अहिंसा की स्थापना ' में आत्मा की उच्चता को ' वसुधैव - कुटुम्बकम् ' के संबंध में स्वीकार करना संभव हो जाता है क्योंकि धर्म की लौकिकता के साथ अध्यात्म की अलौकिकता से जुड़े पक्ष राजयोग की पारलौकिकता के मध्य श्रेष्ठ सामंजस्य बनाने में सफल हो जाते हैं जो मानवीय संवेदनशीलता को ' आत्मा के गुण एवं शक्ति संपन्न ' स्वरूप में सामाजिक सदभाव के लिए सदा ही कार्यरत रहते हैं।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्निहोत्री, प्रभुदयालु (1977) रामचरित मानस : एक विश्लेषण, प्रकाशक : रामचरित मानस चतुशताब्दी समारोह की साहित्य शोध समिति, म.प्र., भोपाल।
2. महाप्रज्ञ, आचार्य (2007) तत्व बोध-1 ' जीवन कौशल के अनुभूत सूत्र ', तत्व बोध - 2 ' युग चेतना के अनुभूत बोधि - सूत्र ', प्रकाशक : राजस्थान पत्रिका, जयपुर।
3. कृष्णमूर्ति, जे. (2004) जीवन भाष्य [Commentaries on living (1) (2) एवं(3) का हिंदी रूपांतरण] प्रकाशक : सर्व सेवा संघ प्रकाशक, राजघाट, वाराणसी।
4. कोठारी, गुलाब (2008) मानस -1 ' मानव मन : प्रकृति और प्रक्रिया', मानस - 2 ' मानव मन : व्यक्ति और समाज', मानस - 3 ' मानव शरीर : स्थूल और सूक्ष्म, मानस - 4 ' अध्यात्म और जीवन- मूल्य, प्रकाशक : राजस्थान पत्रिका, जयपुर।
5. स्वामी, विवेकानंद (2016) 1- ज्ञानयोग ( वेदांत पर दिए गए भाषणों का संग्रह ) 2 - राजयोग ' पातंजल योगसूत्र,सूत्रार्थ और व्याख्या सहित' ( न्यूयार्क, अमेरिका में दिए गए व्याख्यानों का हिंदी रूपांतरण, 3 - कर्मयोग, ( भावों एवं विचारों का संकलन ) 4 - भक्तियोग, ( भक्ति के भिन्न- भिन्न प्रकार के साधनों का विवेचन) 5 - प्रेमयोग, ( रिलीजन ऑफ लव' का हिंदी अनुवाद) 6 - सरल राजयोग, ( योग - साधन एवं जीवन - गठन विषयक व्याख्यान) 7 - ज्ञान योग पर प्रवचन ( ज्ञान योग का परिचय एवं ज्ञान साधना का सारांश )
6. गाँधी, महात्मा (2013) अहिंसा की ताकत, (1975) सत्य के प्रयोग, आत्मकथा, (1983) सत्य ही ईश्वर है वाराणसी, सर्व सेवा संघ - प्रकाशन।
7. भावे, संत विनोवा (1978) गीता प्रवचन, (2014) स्थितप्रज्ञ - दर्शन, (1980) उपनिषदों का अध्ययन, वाराणसी, प्रकाशन ; सर्व सेवा संघ, राजघाट।
8. शुक्ल, अजय, (2009) व्यवहार, संबंध और व्यावहारिकता, (2010) परिवर्तन की अंतर्दृष्टि, (2011) विकास का मनोविज्ञान, (2012 ) जीवन के सृजनात्मक पक्ष भोपाल (म.प्र.) प्रकाशक ; मानवीय विकास संस्था।
9. चन्द्र, जगदीश (2001) सम्पूर्ण पवित्रता, (2000) योग की विधि और सिद्धि, (1970) प्रकृति, पुरुष तथा परमात्मा का अविनाशी नाटक, प्रकाशक: ज्ञानामृत प्रेस, आबू रोड (राज.)